पीठः- एस.एस. संधावालिया, मुख्य न्यायाधिपति और डी.एस. तेवतिया, न्यायाधिपति

अधिसूचित क्षेत्र समिति, महेंद्रगढ़,-अपीलार्थी

बनाम

महावीर प्रशाद,- प्रत्यर्थी

नियमित द्वितीय अपील संख्या 2114 of 1978

21 जुलाई, 1983

नगर निगम कर्मचारी बर्खास्तगी नियम, 1941- नियम 3- भारत का संविधान 1950- अनुच्छेद 311(2) जैसा कि संविधान (42 वाँ संशोधन) अधिनियम, 1976 से पहले था - नगरपालिका कर्मचारी को बर्खास्त करना- आरोप पत्र के साथ प्रस्तावित सजा का संकेत देता हुए कारण बताओ नोटिस- प्रस्तावित सजा का उल्लेख करने वाला खंड- क्या वह अपने आप में पक्षपात को जन्म देता है और जांच की कार्यवाही को दूषित करता है- प्रस्तावित सजा के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस- क्या नियम 3 के तहत बर्खास्त कर्मचारी के लिए आवश्यक है- ऐसा नोटिस- क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों के तहत आवश्यक है।

अभिनिर्धारित किया गया कि आरोप-पत्र में प्रस्तावित दंड का मात्र उल्लेख स्वयं जांच अधिकारी के पक्षपात का संकेत नहीं है और जांच केवल तभी दूषित होगी जब प्रस्तावित दंड का संकेत देने वाले आरोप-पत्र के अन्य तथ्यों से पूर्वाग्रह स्थापित होता है। यदि किसी उपबंध में या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ की परिकल्पना की गई है कि आरोपपत्र की तामील के साथ-साथ अपराधी अधिकारी को उस दंड के संबंध में कारण बताओ नोटिस भी दिया जा सकता है जो आरोपपत्र की स्थापना की स्थिति में दिया जा सकता है और फिर यदि ऐसा कारण बताओ नोटिस आरोपपत्र के साथ दिया जाता है तो निश्चित रूप से इसका यह अर्थ नहीं होगा कि क्योंकि दंड अग्रिम रूप से इंगित किया गया है, क्योंकि अपराधी अधिकारी को उनके बारे में जो कुछ भी कहना था, उसके बावजूद प्रश्नगत आरोप स्थापित किए जाने के लिए बाध्य थे; और यह कि उसे कारण बताओ नोटिस में इंगित दंड दिया जाना बाध्य था, चाहे अपराधी अधिकारी को इसके शमन में क्या कहना था।

(जिम्मन 25 और 29).

अभिनिर्धारित किया गया कि यदि न तो नगरपालिका कर्मचारी बर्खास्तगी नियम, 1941 के नियम 3 का प्रावधान, जिसमें प्रत्येक आरोप के संबंध में प्रारंभ से लेकर निष्कर्ष की अभिलेखन तक की प्रक्रिया शामिल है और न ही प्रस्तावित दंड के संबंध में दूसरे कारण बताओ नोटिस के लिए उपबंधित नियमों में कोई अन्य उपबंध है, तो दंड देने वाले प्राधिकारी पर दंड देने से पहले प्रस्तावित दंड के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस देना अनिवार्य नहीं होगा। प्रस्तावित दंड के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस देना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के सिद्धांत की आवश्यकता नहीं है और चूंकि संविधान के अनुच्छेद 311(2) के प्रावधान नगरपालिका कर्मचारी के मामले की ओर आकर्षित नहीं हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि नियम 3 के तहत किसी कर्मचारी को दिया गया दंड दूषित था क्योंकि दण्ड दूसरा कारण बताओ नोटिस दिए बिना लगाया गया था।

(जिम्मन 34 और 35)

अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, नारनौल के न्यायालय की डिक्री दिनांक 5 अक्टूबर, 1978 से नियमित द्वितीय अपील, जिसमें ख़र्चे के साथ उप-न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, महेंद्रगढ़ के निर्णय दिनांक 27 मार्च, 1978 की पुष्टि की गई, जिसमें इस आशय की घोषणात्मक डिक्री पारित की गई कि वादी महावीर प्रशाद के विरुद्ध प्रतिवादी-समिति द्वारा श्री नसीम अहमद की अध्यक्षता में, जो कि उन दिनों एक सदस्यीय समिति के रूप में कार्य कर रहे थे, पारित बर्ख़ास्तगी आदेश दिनांक 27 जनवरी, 1975 अवैध और अमान्य हैं और यह कि उक्त आदेश से वादी की सेवा में किसी भी प्रकार का विराम नहीं आएगा और इसी तरह के आदेश को अपास्त करते हुए, परिणामी राहत के रूप में वादी उस अवधि के दौरान वेतन प्राप्त करने का हकदार होगा, जब कि उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं थी, जो उक्त अवधि के दौरान प्रचलित नियमों के तहत उसे देय थीं और पक्षों को उनका खर्चा स्वयं वहन करने के लिए छोड़ दिया गया था।

उपस्थित:-

अपीलार्थी की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.आर. अग्निहोत्री के साथ अधिवक्ता श्री वी.के. वशिष्ठ।

प्रत्यर्थीगण की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे.एल. गुप्ता के साथ अधिवक्तागण राकेश खन्ना और राजीव आत्मा राम।

निर्णय

डी.एस. तेवतिया, न्यायाधिपति

(1) ये दो नियमित द्वितीय अपील संख्या 2114 और 2115 of 1978, अन्यथा एक विद्वान एकल न्यायाधिपति द्वारा निस्तारणीय, मेरे द्वारा खण्ड पीठ को संदर्भित की गई क्योंकि निर्णय के लिए कानून के दो महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हुए थे और उन पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णय समान नहीं थे। इन प्रश्नों को इस प्रकार विरचित किया जा सकता हैः-

> "(i) क्या किसी नगरपालिका कर्मचारी के मामले में आरोप-पत्र के साथ प्रस्तावित दंड का संकेत देने वाले कारण बताओ नोटिस की तामील पक्षपात को जन्म देगी और जांच कार्यवाही और अपराधी अधिकारी के विरुद्ध पारित अंतिम आदेश को दूषित करेगी; और
>
> (ii) क्या नगरपालिका कर्मचारियों के मामले में जिनके विरुद्ध नगरपालिका कर्मचारी बर्खास्तगी नियम, 1941 के नियम 3 के संदर्भ में अनुशासनात्मक जांच की जाती है, और जहां प्रस्तावित दंड का कारण बताओ नोटिस आरोप-पत्र के साथ दिया गया था, भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत परिकल्पित चरण पर, जैसा कि 42वें संशोधन से पहले मौजूद था, दूसरा कारण बताओ नोटिस, आवश्यक होगा?”

(2) उपर्युक्त प्रश्नों से संबंधित तथ्य विवादित नहीं हैं और इन्हें इस प्रकार देखा जा सकता हैः -

(3) नियमित द्वितीय अपील संख्या 2114 of 1978 का प्रत्यर्थी महावीर प्रशाद और नियमित द्वितीय अपील संख्या 2115 of 1978 का प्रत्यर्थी बनवारी लाल अधिसूचित क्षेत्र समिति, महेंद्रगढ़ में क्रमशः चुंगी मोहर्रर और चुंगी चपरासी थे।

(4) श्री छजू राम, चुंगी अधीक्षक ने 2 नवंबर, 1974 को प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराई थी। उप-मंडल मजिस्ट्रेट ने एक सदस्यीय समिति का गठन किया और समिति के कानूनी सलाहकार की सलाह प्राप्त करने के बाद चुंगी अधीक्षक और टोंगा चालक के बयान दर्ज करने का निर्देश दिया। उक्त बयानों के आधार पर, प्रत्यर्थीगण को आरोप पत्र जारी किए गए थे, जिसके साथ बर्खास्तगी की प्रस्तावित सजा के संबंध में कारण बताओ नोटिस भी था। प्रत्यर्थीगण ने उन्हें दिए गए आरोप पत्रों पर अपना जवाब दाखिल किया। इसके बाद, श्री नसीम अहमद द्वारा एक नियमित जांच की गई और उसमें उन्होंने कई गवाहों के बयान दर्ज किए। जांच पूरी होने के बाद 27 जनवरी, 1975 को बिना नया कारण बताओ नोटिस जारी किए बर्खास्तगी का आदेश पारित कर दिया गया।

(5) दो दीवानी मुकदमों के माध्यम से, उन्होंने प्रतिवादी अधिसूचित क्षेत्र समिति, महेंद्रगढ़ (इसके बाद समिति के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित 22 जनवरी, 1975 के आदेश को चुनौती दी, जिसमें उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया था। विचारण न्यायालय ने दावे का डिक्री किया और अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय की डिक्री और निर्णय को बरकरार रखा और अपील को खारिज कर दिया। उपर्युक्त प्रस्तुत दो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर, अधीनस्थ दोनों न्यायालयों ने प्रत्यर्थी कर्मचारियों के पक्ष में निर्णय सुनाया।

(6) उपर्युक्त विरचित किए गए प्रश्नों से संबंधित न्यायिक दृष्टांत जो अधिवक्ताओं की ओर से उद्धृत किए गए हैं, अब ध्यान देने योग्य हैं। प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने खेमचंद बनाम भारत संघ[1], सुधीर रंजन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[2], माणिकम बनाम पुलिस अधीक्षक[3], कोरी प्रा. घोष बनाम पश्चिम

[1] AIR 1958 S.C. 300
[2] AIR 1961 Calcutta 626
[3] AIR 1964 Madras 375

बंगाल राज्य[4], एम. चिन्नाप्पा रेड्डी बनाम राज्य[5], अमर नाथ बनाम आयुक्त[6], राज पॉल बनाम प्रशासक एम. सी.[7], और डॉ. एस. एस. प्रभू बनाम हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय[8] के मामलों का उल्लेख किया है; जबकि अधिसूचना क्षेत्र समिति के अधिवक्ता तोम्बी सिंह बनाम गोपाल सिंह[9], विट्ठल महादेव बनाम भारत संघ[10], करम चंद महतो बनाम बिहार राज्य (पटना)[11], जनार्दन कर बनाम उड़ीसा राज्य[12], सुधीर चंद्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[13], और बमशकल बनाम आर.पी.एफ. बॉम्बे[14] के मामलों पर भरोसा जताया है।

(7) खेमचंद(उपर्युक्त) के मामले से प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता द्वारा निर्णय के जिम्मन 21 में वर्णित निम्नलिखित टिप्पणियों पर विशेष जोर दिया गया:–

> "तथापि, आई.एम. लाल (बी) के मामले में न्यायिक समिति के निर्णय का ध्यानपूर्वक अवलोकन दर्शाता है कि उस मामले में निर्णय इस आधार पर आगे नहीं बढ़ा कि प्रस्तावित दंड के विरुद्ध आई.एम. लाल को केवल इसलिए अवसर नहीं दिया गया था क्योंकि नोटिस में कई दंड शामिल किए गए थे, लेकिन निर्णय वास्तव में इस आधार पर आगे बढ़ा कि यह अवसर उस अवस्था पर पहुँचने के बाद दिया जाना चाहिए था जहां आरोप स्थापित हो चुके थे और सक्षम प्राधिकारी ने अस्थायी रूप से साबित आरोप की गंभीरता या अन्यथा पर अपना विवेक लगाया था और एक विशेष दंड का प्रस्ताव दिया था। जैसा कि महा न्यायभिकर्ता निष्पक्ष रूप से स्वीकार करते हैं, दो चरणों में दो नोटिस देने की इस प्रक्रिया का पालन करने में कोई व्यावहारिक कठिनाई नहीं है। इस प्रक्रिया में संबंधित अधिकारी को कुछ आश्वासन देने की योग्यता भी है कि सक्षम प्राधिकारी उसके संबंध में खुला

---

[4] 1966 S.L.R. 625
[5] AIR 1969 A.P. 234
[6] 1969 Cur L.J. 484
[7] 1970 S.L.R. 494
[8] 1974(1) S.L.R. 285
[9] AIR 1963 Manipur 28
[10] AIR 1967 Bombay 332
[11] 1974(1) S.L.R. 461
[12] 1974 Lab. I.C. 296
[13] 1976(2) S.L.R. 53
[14] AIR 1967 M.P. 91

दिमाग रखता है। यदि सक्षम प्राधिकारी को आरोप साबित होने से पहले यह निर्धारित करना था कि संबंधित सरकारी कर्मचारी को एक विशेष दंड दिया जाएगा, तो बाद वाला यह महसूस कर सकता है कि सक्षम प्राधिकारी ने उसके विरुद्ध आम तौर पर आरोप के विषय पर, या फिर सजा के संबंध में एक राय बनाई थी। इस पहलू पर विचार करते हुए भी हमारे द्वारा अपनाई गई व्याख्या न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के अनुरूप प्रतीत होती है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए अपितु किया गया भी देखा जाना चाहिए।"

(8) खेम चंद, दिल्ली ऑडिट फंड के अन्तर्गत एक सब इंस्पेक्टर थे। जाँच के बाद उन्हें बर्खास्त कर दिया गया। उनकी बर्खास्तगी के विरुद्ध उनके द्वारा उठाया गया मुद्दा यह था कि उन्हें उनके संबंध में की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने का अवसर नहीं दिया गया था, जिसका वे संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत हकदार थे। न्यायाधिपतिगण ने कहा कि अपराधी अधिकारी की ओर से उठाए गए प्रश्न का उत्तर अनुच्छेद 311(2) के प्रावधान की सही व्याख्या पर निर्भर करेगा। न्यायाधिपतिगण ने अनुच्छेद 311 के उपखंड (2) में आने वाले शब्द 'उचित अवसर' की व्याख्या करते हुए यह मत दिया कि उचित अवसर कार्यवाही के जांच भाग तक ही सीमित नहीं था, अपितु प्रस्तावित सजा के विरुद्ध कारण दर्शाने के दूसरे अवसर की भी परिकल्पना करता है।

(9) खेमचंद(उपर्युक्त) के मामले में उपर्युक्त उद्धृत जिम्मन में वर्णित टिप्पणियां कि न्यायशास्त्र का मूल सिद्धांत कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, अपितु यह भी देखा जाना चाहिए कि ऐसा किया गया था, जो उस व्याख्या के अनुरूप था जो कि उन्होंने 'उचित अवसर' अभिव्यक्ति को दी थी; अनुच्छेद 311 (2) के प्रावधानों की आवश्यकता के संदर्भ में थी और सार्वभौमिक अनुप्रयोग के सामान्य सिद्धांत को निर्धारित करने के माध्यम से नहीं। निर्णय में कहीं भी न्यायाधिपतिगण ने अप्रत्यक्ष रूप से यह संकेत नहीं दिया गया था कि उक्त दृष्टिकोण सार्वभौमिक अनुप्रयोग होगा, यहां तक कि जहां अनुच्छेद 311(2) के प्रावधान लागू नहीं है और न ही जांच के नियमों में उनके समान कोई प्रावधान हैं।

(10) सुधीर रंजन (उपर्युक्त) के मामले में भारत सरकार अधिनियम की धारा 240 के प्रावधान लागू थे, और न्यायमूर्ति बनर्जी, जिन्होंने पीठ के लिए राय दी थी, ने अन्य बातों के साथ-साथ भारत सरकार अधिनियम की धारा 240 और संविधान के अनुच्छेद 311(2) दोनों में उत्पन्न होने वाली अभिव्यक्ति "युक्तियुक्त अवसर" की व्याख्या के संबंध में खेमचंद (उपर्युक्त) के मामले में न्यायाधिपतिगण की टिप्पणियों पर भरोसा किया था और अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी को भेजा गया संयुक्त नोटिस आरोप के विरुद्ध कारण दर्शाने और साथ-साथ बर्ख़ास्त किए जाने का प्रस्तावित दंड, भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 240 के अनुपालन में नहीं था और इसलिए, आरोप स्थापित किए जाने के बाद प्रस्तावित दंड के विरुद्ध कारण दिखाने के लिए दूसरे अवसर के बिना दिया गया दंड विधि की दृष्टि में बुरा, निष्क्रिय और शून्य था। इसके अलावा, इस मामले में कारण बताने के लिए केवल एक दिन का नोटिस दिया गया था और वह भी विदेश में रहने वाले व्यक्ति को। कुछ हद तक यह तथ्य अपराधी अधिकारी के खिलाफ पूर्वाग्रह को दर्शाता प्रतीत होता है और जब निर्णय लिया जाता है, तो उसके खिलाफ कोई भी आरोप पत्र के साथ प्रस्तावित सजा के बारे में कारण दिखाने के लिए नोटिस में पढ़ सकता है कि संबंधित प्राधिकरण अपराधी अधिकारी को दंडित करने के लिए पूर्वनिर्धारित था।

(11) माणिकम (उपर्युक्त) का मामला एक ऐसा मामला था जिसमें अनुच्छेद 311 (2) के प्रावधानों को लागू किया गया था। उस मामले में आरोप निर्धारित करने के बाद, आरोपों का ज्ञापन इस प्रकार आगे बढ़ाः-

> "कारण दिखाएँ कि आपको उपरोक्त घोर अनुशासनहीन आचरण के लिए बल से बर्खास्त क्यों नहीं किया जाना चाहिए या अन्यथा दंडित क्यों नहीं किया जाना चाहिए।"

(12) विद्वत न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि आरोप विरचित करने का उक्त तरीका अनुच्छेद 311 के अनुरूप नहीं था। आरोप के स्तर पर, सजा का कोई सवाल ही नहीं उठता, कि आरोप-पत्र में प्रस्तावित सजा का उल्लेख किया जाना, यह तथ्य यह दिखा सकता है कि आरोपों की जांच होने और जांच के आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले ही याचिकाकर्ता ने पूर्वाग्रह व्यक्त किया था।

(13) स्पष्टतः उस मामले में प्रस्तावित दंड के विरुद्ध कारण दर्शाने हेतु दूसरा अवसर नहीं दिया गया था जिसकी अनुच्छेद 311 के उपबंध में अनिवार्य रूप से परिकल्पना की गई थी।

(14) गौरी प्रा. घोष (उपर्युक्त) के मामले में अपराधी अधिकारी को न केवल आरोप पत्र के साथ प्रस्तावित सजा के संबंध में कारण बताओ नोटिस दिया गया था, अपितु जांच के पश्चात् भी, बर्खास्तगी के दंड का प्रस्ताव करने वाला दूसरा कारण बताओ नोटिस भी दिया गया था। न्यायाधिपति मित्रा ने अभिनिर्धारित किया कि आरोप-पत्र के साथ पहले कारण बताओ नोटिस की तामील एक बंद दिमाग की धारणा है जबकि एक खुला दिमाग न केवल एक सरकारी कर्मचारी के दोष के सवाल पर रखा जाना चाहिए, अपितु अधिरोपित किए जाने वाले दंड के सवाल पर भी रखा जाना चाहिए, यदि आरोप साबित हो गए थे और खुले दिमाग रखने के सिद्धांत का उल्लंघन किया जाता है यदि एक कारण बताओ नोटिस जिसमें न केवल आरोप, अपितु प्रस्तावित सजा का भी उल्लेख किया गया है।

(15) यह स्वीकृय है कि अनुच्छेद 311 के उपबंध उस मामले पर ही लागू होंगे, जिसके उपबंध में जांच के समापन के पश्चात् ही, न कि उससे पूर्व प्रस्तावित दंड के लिए कारण बताओ नोटिस की परिकल्पना की गई है। न्यायाधिपति मित्रा, प्रस्तावित सजा के विरुद्ध पहले कारण बताओ नोटिस को केवल एक अतिशयोक्ति के रूप में नहीं मान सकते क्योंकि दुर्भावना के आरोप लगाए गए हैं और उन लोगों द्वारा कोई शपथ-पत्र दायर नहीं किया गया था जिनके विरुद्ध इस तरह के आरोप लगाए गए थे और यह देखा गया था कि जांच अधिकारी को दोषी अधिकारी को आरोपों के समर्थन में सबूत पेश करने की अनुमति देनी चाहिए थी।

(16) ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधिपति मित्रा ने खेमचंद (उपर्युक्त) के मामले के लिए बहुत व्यापक रूप से सिद्धांत प्रतिपादित किया है, जिस पर मुख्य रूप से विद्वत न्यायाधीश द्वारा निर्भरता ज़ाहिर की गई है, कानून का ऐसा कोई सिद्धांत नहीं देता है और इसलिए, उक्त निर्णय सार्वभौमिक अनुप्रयोग के सिद्धांत के विकास की गारंटी नहीं देता है कि यदि प्रस्तावित दंड के संबंध में कारण बताओ नोटिस

आरोप पत्र के साथ दिया जाता है, तो यह अपने आप में एक बंद दिमाग और मामले के पूर्व-निर्णय को दर्शाता है।

(17) एम.चिन्नाप्पा रेड्डी (उपर्युक्त) के मामले में विद्वान न्यायाधीश ने माणिकम (उपर्युक्त) के मामले के निर्णय का अनुसरण किया और साथ ही आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एक पूर्व निर्णय का भी अनुसरण किया, जिसे मोहन दास बनाम पुलिस अधीक्षक खमनेथ[15] के रूप में रिपोर्ट किया गया था।

(18) यहां फिर से, विद्वान न्यायाधीश ने उस मामले में जो दृष्टिकोण लिया था, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के संदर्भ में था।

(19) अमर नाथ (उपर्युक्त) का मामला एक ऐसा मामला था जिसमें सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में गवाहों से पूछताछ नहीं की गई थी और न ही उन गवाहों से जिरह करने का कोई अवसर दिया गया था। जांच अधिकारी ने सजा सुनाते समय सरकारी कर्मचारी के पिछले रिकॉर्ड को ध्यान में रखा था और ना तो नोटिस में इसका खुलासा किया और ना ही पिछले रिकॉर्ड के आधार पर कोई आरोप विरचित किया गया था। यह एक ऐसा मामला था जिसमें आरोप पत्र के साथ सजा के संबंध में कारण बताओ नोटिस दिया गया था। तुली, न्यायाधिपति ने गौरी प्र घोष (उपर्युक्त) के मामले के निर्णय का अनुसरण करते हुए यह कहा कि जांच को दूषित कर दिया गया था क्योंकि आरोप-पत्र के साथ प्रस्तावित सजा के संबंध में कारण बताओ नोटिस देने से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन हुआ था, जो की बंद दिमाग़ को दर्शाता है। यह एक ऐसा मामला था जिसमें पंजाब सिविल सेवा (दंड और अपील) नियम, 1952 को लागू माना गया था और जांच के तरीके के संबंध में नियम 7 उप-नियम (2) के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था।

(20) राज पॉल (उपर्युक्त) का मामला फिर से नगरपालिका समिति के एक कर्मचारी से संबंधित मामला है। इस मामले में विद्वान न्यायाधीश ने अमर नाथ (उपर्युक्त) और गौरी प्र.घोष (उपर्युक्त) के मामलों में दिए गए अपने पहले के निर्णयों का पालन किया था, जो कि खेमचंद (उपर्युक्त) के मामले पर निर्भर

[15] 1967(1) Andh. W.R. 156

थे। इस मामले में विद्वान न्यायाधीश ने यह राय व्यक्त की कि नगरपालिका समिति के अध्यक्ष द्वारा याचिकाकर्ता को निलंबित करने, उस पर आरोप पत्र देने, जांच करने और रिपोर्ट बनाने में अपनाई गई पूरी प्रक्रिया अधिनियम के प्रावधानों और इस विषय पर नियमों के विरुद्ध थी। इसके बाद, विद्वत न्यायाधीश ने कहा कि अपराधी कर्मचारी को दिए गए आरोप पत्र को इस आधार पर भी रद्द करने की आवश्यकता थी कि उसमें प्रस्तावित सजा का उल्लेख किया गया था।

(21) डॉ. एस.एस. पभू (उपर्युक्त) के मामले में, न्यायमूर्ति तुली ने केवल अमर नाथ (उपर्युक्त) और गौरी प्रा. घोष (उपर्युक्त) के मामलों में अपने पहले के निर्णयों का पालन किया और यह अभिनिर्धारित किया कि आरोप पत्र में अतिरिक्त रूप से दोषी अधिकारी को प्रस्तावित सजा के विरुद्ध कारण दिखाने के लिए कहा गया, जो कि अवैध था और इसे रद्द किया जाना था।

(22) विट्ठल महादेव (उपर्युक्त) के मामले में, न्यायमूर्ति ताराकुंडे ने हमारी राय में सही टिप्पणी करते हुए यह मत व्यक्त किया कि एक ऐसे मामले में जहां अपराधी अधिकारी को भेजे गए आरोप-पत्र में एक खंड यह भी था जिसमें उसे यह कारण दिखाने के लिए कहा गया था कि उसे बताई गई सज़ा क्यों नहीं दी जानी चाहिए, तो उस मामले में उक्त खंड अपने आप में संबंधित प्राधिकारी की ओर से किसी भी पूर्वाग्रह का संकेत नहीं होगा। विद्वत न्यायाधीश ने कहा कि यदि माणिकम (उपर्युक्त) के मामले में उस मामले का निर्णय करने वाले विद्वत न्यायाधीश ने एक सामान्य प्रस्ताव के रूप में यह निर्धारित करने का इरादा किया होता कि एक आरोप पत्र जिसमें संयोग से अपराधी को कारण दिखाने के लिए कहा गया है कि उसे कथित अपराध के लिए प्रस्तावित सजा क्यों नहीं दी जानी चाहिए, अनिवार्य रूप से संविधान के अनुच्छेद 311 का उल्लंघन था, तो इस संबंध में वह उस दृष्टिकोण से भिन्न था।

(23) रामशकल यादव (उपर्युक्त) के मामले में, मुख्य न्यायमूर्ति दीक्षित, जिनके समक्ष खेमचंद (उपर्युक्त) और रामनेत्रा बनाम पुलिस उप-अधीक्षक[16] के मामलों पर इस तर्क के समर्थन में भरोसा रखा गया था कि यदि आरोप-पत्र के साथ ही सजा का प्रस्ताव किया गया है, तो जांच दूषित हो जाएगी, तो

[16] AIR 1966 M.P. 58

उन्होंने भी वही संतुलित दृष्टिकोण अपनाया जैसा कि ताराकुंडे, न्यायमूर्ति ने अपनाया था और इस प्रकार टिप्पणी कीः-

"लेकिन आरोप-पत्र में प्रस्तावित सजा का उल्लेख विभागीय जांच को दूषित नहीं करता है और किसी भी तरह से याचिकाकर्ता के विरुद्ध पूर्वाग्रह के संकेत के रूप में नहीं लिया जा सकता है। इसका प्रभाव जांच अधिकारी को जांच के बाद यह निष्कर्ष निकालने से रोकने का नहीं था कि आवेदक के विरुद्ध आरोप साबित नहीं हुआ था या सहायक सुरक्षा अधिकारी को याचिकाकर्ता को दोषमुक्त करने या कारण बताने के लिए नोटिस में एक और सजा का प्रस्ताव करने से रोकने का नहीं था।

खेमचंद (उपर्युक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क का समर्थन नहीं करता है। उस मामले में यह टिप्पणी कि अपराधी अधिकारी को अपना प्रतिनिधित्व करने का अवसर दिया जाना चाहिए कि उस पर प्रस्तावित दंड क्यों नहीं लगाया जाना चाहिए और यह अवसर देने के लिए उचित चरण जांच समाप्त होने के पश्चात् है और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध साबित किए गए आरोपों की गंभीरता या अन्यथा पर अपना दिमाग लगाने के बाद, अस्थायी रूप से तीन दंडों में से एक को लागू करने का प्रस्ताव है, जो बर्खास्तगी, या सेवा से हटाने या रैंक में कमी की सजा है, इसका अर्थ यह नहीं है कि भले ही यह अवसर दिया गया हो, यदि आरोप पत्र में प्रस्तावित सजा का उल्लेख किया गया था, तो यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि सरकारी कर्मचारी के पास संविधान के अनुच्छेद 311(2) के अनुसार अपना बचाव करने का कोई उचित अवसर नहीं था।"

(24) करम चंद शर्मा (उपर्युक्त) के मामले में, न्यायमूर्ति शर्मा ने गौरी प्रसाद घोष (उपर्युक्त), एम. चिन्नाप्पा रेड्डी (उपर्युक्त) और राज पॉल (उपर्युक्त) के मामलों में लिए गए दृष्टिकोण के साथ अपनी सम्मानजनक असहमति निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त कीः-

"यह कहना सही नहीं है, जैसा कि श्री मुखर्जी द्वारा तर्क दिया गया है कि एकमात्र तथ्य के कारण कि एक अपराधी सेवक को दिए गए आरोप पत्र में उस दण्ड का भी उल्लेख किया गया है, जो उस पर अधिरोपित किया जा सकता है यदि वह जांच पर दोषी पाया जाता है, अन्य परिस्थितियों से असंबद्ध, कार्यवाही को अवैध और शून्य बनाता है। यह प्रश्न कि क्या दंड देने वाले प्राधिकारी को किसी विशेष मामले में किसी पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है या कि उसने कार्यवाही में किसी मुद्दे का पूर्वाग्रह किया है, अनिवार्य रूप से तथ्य का प्रश्न है और प्रत्येक मामले में तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए। एक सामान्य नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि साक्ष्य, तथ्यों और परिस्थितियों से अलग, ऐसे मामलों में, पूर्वाग्रह का अनुमान अप्रतिरोध्य है। यदि उपर्युक्त तीनों मामलों की व्याख्या श्री मुखर्जी के सुझाव के अनुसार अन्यथा करने के लिए की जाती है, तो मैं उन विद्वान न्यायाधीशों के प्रति बहुत सम्मान के साथ हूं जिन्होंने उक्त मामलों का निर्णय लिया, परन्तु मैं उस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूँ।"

(25) जनार्दन कर (उपर्युक्त) के मामले में उड़ीसा उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया और अभिनिर्धारित किया कि आरोप-पत्र में प्रस्तावित दंड का केवल उल्लेख स्वयं जांच अधिकारी के पक्षपात का संकेत नहीं है, यदि प्रस्तावित दंड का संकेत देने वाले आरोप-पत्र के अन्य तथ्यों से पक्षपात स्थापित किया जाता है तो जांच दूषित हो जाएगी। मिश्रा, मुख्य न्यायमूर्ति जिन्होंने पीठ के लिए राय दी, उन्होंने खेमचंद (उपर्युक्त) के मामले के निम्नलिखित अंश पर ध्यान दिया-

"यदि सक्षम प्राधिकारी को, आरोप साबित होने से पहले, यह निर्धारित करना था कि संबंधित सरकारी कर्मचारी को एक विशेष दंड दिया जाएगा, तो वह संबंधित व्यक्ति यह महसूस कर सकता है कि सक्षम प्राधिकारी ने उसके विरुद्ध एक राय बना ली है, आम तौर पर आरोप के विषय पर या, कम से कम, सजा के संबंध में। इस पहलू से भी विचार करते हुए-हमारे द्वारा अपनाई गई व्याख्या न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के अनुरूप प्रतीत होती है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, अपितु ऐसा भी प्रतीत होना चाहिए कि किया गया है।"

और विद्वत अधिवक्ता के तर्क पर ध्यान देने के बाद, जिसने उक्त परिच्छेद से यह निष्कर्ष निकालना चाहा कि जहां कहीं भी आरोप-पत्र में प्रस्तावित दंड का संकेत दिया गया है, अंतिम दंड शून्य था और रद्द करने योग्य था, भले ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सभी चरणों में पालन किया गया था और दूसरा कारण बताओ नोटिस दिया गया था, खेमचंद (उपर्युक्त) के मामले के निर्णय को निम्नलिखित शब्दों में समझायाः-

"उपर्युक्त परिच्छेद की इस प्रकार व्याख्या नहीं की जा सकती है। यह याद रखना चाहिए कि उस मामले में न्यायाधिपतिगण जिस पर विचार कर रहे थे, वह विद्वान महा न्यायभिकर्ता का एक तर्क था कि चूंकि प्रस्तावित सजा आरोप पत्र में इंगित की गई थी, इसलिए अपराधी दूसरे कारण बताओ नोटिस की गैर-तामील के कारण किसी भी तरह से पूर्वाग्रहित नहीं था। इस तर्क को खारिज कर दिया गया। न्यायाधिपतिगण ने स्पष्ट रूप से बताया कि दूसरे कारण बताओ नोटिस की तामील मौलिक और सर्वोपरि थी क्योंकि उस स्तर पर प्रस्तावित सजा आरोपों के संबंध में साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद ही सामने आएगी और आरोप पत्र में सजा का संकेत इसके लिए कोई विकल्प नहीं होगा। दूसरी ओर, आरोप-पत्र में प्रस्तावित सजा के संकेत से अपराधी के मन में यह भावना पैदा होने की संभावना है कि जांच से पहले ही निर्णय ले लिया गया था। इसका मतलब यह कहना नहीं है कि आरोप-पत्र में प्रस्तावित दंड का संकेत अपने आप में यह स्थापित करता है कि निष्कर्ष पर पहले ही पहुंचा जा चुका था और बाद की जांच केवल एक छलावा थी। यदि ऐसा था, तो दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी न करने के कारण लगाए गए दंड की अवैधता के बारे में विस्तृत चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं थी। न्यायाधिपतिगण आसानी से कह सकते थे कि- चूंकि आरोप पत्र ने सजा का संकेत दिया था, इसलिए पूरी कार्यवाही अमान्य थी। इसलिए, खेम चंद का मामला इस मुद्दे पर एक आधिकारिक घोषणा नहीं है कि आरोप पत्र में सजा का संकेत पूर्वाग्रह और खुले दिमाग की अनुपस्थिति को स्थापित करता है और परिणामस्वरूप पूरी कार्यवाही को दूषित करता है।"

(26) सुधीर चंद्र (उपर्युक्त) के मामले में न्यायमूर्ति दत्ता, जिन्होंने पीठ की ओर से राय दी, जिसमें मुख्य न्यायाधीश मित्रा भी थे, ने पश्चिम बंगाल राज्य बनाम सतीप्रसाद राय[17](16-ए) के निर्णय की व्याख्या करते हुए कहा कि उन मामलों में जांच विभिन्न परिस्थितियों पर विचार के आधार पर दूषित थी और निर्णय ऐसे सभी कारकों के संचयी प्रभाव पर आधारित था।

(27) यह स्वीकृय है कि अनुच्छेद 311 के प्रावधान नगरपालिका कर्मचारी के मामले की ओर आकर्षित नहीं होते हैं। दूसरा कारण बताओ नोटिस दिया जाना उचित अवसर का हिस्सा था जैसा कि खेमचंद (उपर्युक्त) और अन्य मामलों में न्यायाधिपतिगण द्वारा व्याख्या की गई थी और इस प्रकार इसे अनुच्छेद 311 की अनिवार्य आवश्यकता माना गया था। दूसरे कारण बताओ नोटिस की तामील को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता के स्तर तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। यदि ऐसा होता तो संसद, जिसने संविधान (पंद्रहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 द्वारा स्पष्टीकरण के प्रयोजन के लिए उपखंड (2) में जांच के समापन के पश्चात् अस्थायी दंड के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस देने की परिकल्पना की थी, भारत के संविधान के 42वें संशोधन द्वारा उक्त अपेक्षा को पूरी तरह से समाप्त नहीं करता, जिसके परिणामस्वरूप दूसरा कारण बताओ नोटिस देना अब संवैधानिक अपेक्षा नहीं रह गया।

(28) यदि ऐसी स्थिति है तो यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि अपराधी अधिकारी को प्रस्तावित दंड के बारे में किस स्तर पर अवगत कराया जाएगा, यदि उसे जांच की शुरुआत में ही आरोप-पत्र की तामील के समय प्रस्तावित दंड के बारे में सूचित नहीं किया गया है।

(29) निश्चित रूप से, यदि किसी प्रावधान में या तो स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से यह परिकल्पना की गई है कि आरोप पत्र की तामिल के साथ-साथ अपराधी अधिकारी को उस दंड के संबंध में कारण बताओ नोटिस भी दिया जा सकता है जो आरोप साबित होने की स्थिति में दिया जा सकता है, और फिर यदि ऐसा कारण बताओ नोटिस आरोप पत्र के साथ दिया जाता है तो निश्चित रूप से इसका

([1]6-A) 79 CWN 38

अर्थ यह नहीं होगा कि, क्योंकि दंड अग्रिम रूप से इंगित किया गया है तो प्रश्नगत आरोप साबित किया जाना बाध्यकारी था, इसके बावजूद कि अपराधी अधिकारी को उसके बारे में जो कुछ भी कहना था; और यह कि उसे कारण बताओ नोटिस में इंगित दंड दिया जाना बाध्य था भले भी अपराधी अधिकारी को उसके शमन में कुछ भी कहना हो।

(30) अब जांच के प्रक्रियात्मक पहलू के बारे में बताने वाले प्रासंगिक नियम पर एक नज़र डालने के लिए चरण निर्धारित है जिसके परिणामस्वरूप एक नगर निगम कर्मचारी को बर्खास्त किया जा सकता है।

(31) पंजाब नगरपालिका अधिनियम की धारा 240(1)(n) में सरकार द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ समिति के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति, सजा, निलंबन या निष्कासन की प्रक्रिया को विनियमित करने के नियम के साथ-साथ सजा या निष्कासन के आदेशों के विरुद्ध अपील करने के लिए नियम बनाने की परिकल्पना की गई है। राज्य सरकार ने नगर निगम कर्मचारी बर्ख़ास्तगी नियम, 1941 (जिसे इसके बाद बर्ख़ास्तगी नियम कहा गया है) बनाएँ हैं, जिसका केवल नियम 3 जो कि प्रासंगिक है निम्न अनुसार है :-

> "3. बर्खास्तगी की प्रक्रिया - बर्खास्त किए जाने वाले अधिकारी या कर्मचारी के विरुद्ध कथित प्रत्येक अपराध के संबंध में लिखित रूप में एक निश्चित आरोप विरचित किया जाएगा। अभियुक्त को आरोप के बारे में समझाया जाएगा और उसके समर्थन में साक्ष्य और अन्य कोई भी सबूत जो अभियुक्त अपने बचाव में पेश कर सकता है, उसकी उपस्थिति में दर्ज किया जाएगा और उसके बचाव को लिखित रूप में लिखा जाएगा। विरचित गए प्रत्येक आरोप पर चर्चा की जाएगी और प्रत्येक आरोप पर एक निष्कर्ष दर्ज किया जाएगा।"

(32) नियमों का नाम ही इस तथ्य का संकेत है कि जिस व्यक्ति पर इन नियमों में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार मुक़दमा चलाया गया है, वह बर्ख़ास्त होने के लिए उत्तरदायी होगा यदि वह आरोप जिसके लिए उस पर मुकदमा चलाया गया है, वह साबित हो जाता है। नियम 3 अन्य बातों के साथ-साथ जब यह कहता है कि बर्खास्त किए जाने वाले अधिकारी या कर्मचारी के विरुद्ध कथित प्रत्येक अपराध के संबंध

में लिखित रूप में एक निश्चित आरोप विरचित किया जाएगा, तो अपराधी अधिकारी को एक स्पष्ट नोटिस भी दिया जाता है कि यदि आरोप साबित हो जाता है, तो वह बर्ख़ास्त किए जाने के लिए उत्तरदायी हो सकता है।

(33) यदि वैधानिक प्रावधानों की प्रकृति ही ऐसी है, तो आरोप-पत्र के साथ वह नोटिस दिया जाना जिसमें अपराधी अधिकारी से यह कारण दिखाने की अपेक्षा की गई है कि प्रश्नगत आरोप साबित होने की स्थिति में जो दंड दिया जा सकता है, वह उसे क्यों ना दिया जाए, तो वह नोटिस स्वयं पक्षपातपूर्ण नहीं हो सकता। यदि गौरी घोष (उपर्युक्त) के मामले में कथित रूप से विकसित हुए सिद्धांत और बाद में कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा लागू किए गए मामलों को अन्मय माना जाता है, तो ऐसे मामले में भी जहां जांच के दौरान अपराधी अधिकारी को पूरी बात को स्वीकार करना था और अपना अपराध स्वीकार करता है और फिर आरोप की गंभीरता के अनुरूप सजा दी जाती है, वहाँ भी जांच और सजा इस तथ्य के कारण दूषित हो जाएगी कि आरोप पत्र के साथ-साथ आरोप स्थापित होने की स्थिति में प्रस्तावित सजा के खिलाफ कारण बताओ नोटिस दिया गया था। हमारी राय में, इस तरह का दृष्टिकोण निश्चित रूप से प्राकृतिक न्याय के किसी भी सिद्धांत को बढ़ावा नहीं देता है, अपितु इसके विपरीत वही न्याय की विफलता का कारण बनेगा।

(34) यदि ना तो नियम 3 के प्रावधान में, जिसमें प्रारंभ से प्रत्येक आरोप के संबंध में निष्कर्ष के अभिलेखन की प्रक्रिया सम्मिलित है और ना ही प्रस्तावित दंड के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस देने के लिए नियमों में कोई अन्य प्रावधान है, तो क्या दंड देने वाले प्राधिकारी को दंड देने से पहले प्रस्तावित दंड के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस देना अनिवार्य होगा?

(35) जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है कि प्रस्तावित दंड के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस दिया जाना प्राकृतिक न्याय के नियमों के सिद्धांत की अपेक्षा नहीं है और संविधान के अनुच्छेद 311(2) के प्रावधान नगरपालिका कर्मचारी के मामले की ओर आकर्षित नहीं होते है, इसलिए यह नहीं कहा जा

सकता कि प्रत्यर्थीगण को दिया गया दंड दूषित था क्योंकि दंड दूसरा कारण बताओ नोटिस दिए बिना लगाया गया था।

(36) प्रत्यर्थीगण को संभावित दंड के बारे में सूचित कर दिया गया था, यदि उनके विरुद्ध आरोप स्थापित हो जाते, तो वे यह दर्शाने के लिए अवसर का लाभ उठा सकते हैं कि या तो आरोप इतने गंभीर नहीं थे या सज़ा घटाने वाली ऐसी पर्याप्त परिस्थितियां मौजूद थीं जिससे कि कारण बताओ नोटिस में प्रस्तावित दंड से कम दंड लगाने की आवश्यकता होती।

(37) उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, हम दोनों प्रस्तावों का उत्तर नकारात्मक में और प्रत्यर्थी-कर्मचारियों के विरुद्ध देते हैं।

(38) उपर्युक्त वर्णित कारणों अनुसार, हम अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हैं और वाद को खारिज करते हैं और ख़र्चे के संबंध में बिना किसी आदेश के अपीलों की अनुमति देते हैं।

एस.एस. संधावालिया, मुख्य न्यायाधिपति - मैं सहमत हूँ।

अस्वीकरण :-

स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय अपीलार्थी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

ऋषभ अग्रवाल
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी, हरियाणा।
UID NO.:- HR0675